❐ मानमल कुदाल

आचारांग सूत्र में प्रतिपादित समता का स्वरूप

आचारांग सूत्र जैन अंग-आगमों का प्रथम अंगसूत्र है। आचारांग में जिन विषयों का उल्लेख है वे इतने व्यापक और सामान्य हैं कि ग्यारह अंगों में से प्रत्येक अंग में किसी न किसी प्रकार उनकी चर्चा आती ही है। आचारांग का समस्त दर्शन अमूर्त चिंतन का परिणाम न होकर सहज प्रत्यक्षीकरण पर आधारित है। महावीर ने कभी यह नहीं कहा कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसे आँख बंद कर सही मान ही लिया जाय। महावीर बार-बार हमें संसार (राग-द्वेष) की गतिविधियों को स्वयं देखने के लिए कहते हैं। आचारांग में इसके लिए उन्होंने ''पास'' शब्द का प्रयोग किया है।[१] वस्तुतः वे हमें स्वतंत्र रूप से अपनी अनुभूतियों के द्वारा उन निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए प्रेरित करते हैं जो स्वयं महावीर ने अपने अनुभव और प्रत्यक्ष से फलित किए थे। यह जैनियों का आचारदर्शन भी है।

जैन आचारदर्शन में आचरण के कुछ सामान्य नियम ऐसे हैं, जिनका पालन करना गृहस्थ और श्रमण दोनों के लिए आवश्यक है। इनमें षट् आवश्यक कर्म, दस धर्मों का परिपालन, दान, शील, तप और भाव, बारह अनुप्रेक्षाएँ तथा समाधिमरण है। जैन आगमों में आवश्यक कर्म छः माने हैं– सामायिक, स्तवन, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान।

सामायिक समत्ववृत्ति की साधना है। जैनाचारदर्शन में समत्व की साधना जीवन का अनिवार्य तत्व है। वह नैतिक साधना का अथ और इति दोनों है। समत्व साधना के दो पथ हैं, बाह्य रूप में वह सावद्य (हिंसक) प्रवृत्तियों का त्याग है[२], तो आन्तरिक रूप में वह सभी प्राणियों के प्रति आत्मभाव (सर्वत्र आत्मवत् प्रवृत्ति) तथा सुख-दुःख, जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, निन्दा-प्रशंसा में समभाव रखना है।[३] **सामायिक समभाव में है, रागद्वेष के प्रसंगों में मध्यस्थता रखने में है। माध्यस्थवृत्ति ही समता है।[४] समता (सामायिक) कोई रूढ़ क्रिया नहीं, वह तो समत्ववृत्ति रूप पावन आत्मगंगा में अवगाहन है, जो समग्र राग-द्वेष जन्य कलुष को आत्मा से अलग कर मानव को विशुद्ध बनाती है।** संक्षेप में सामायिक (समता) एक ओर चित्तवृत्ति का समत्व है तो दूसरी ओर पाप विरति।[५] समत्ववृति की यह साधना सभी वर्ग, सभी जाति और सभी धर्मवाले कर सकते हैं। किसी वेशभूषा और धर्म विशेष से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई भी मनुष्य चाहे गृहस्थ हो या श्रमण, जैन हो या अजैन, समत्ववृति की आराधना कर सकता है। वस्तुतः जो समत्ववृत्ति की साधना करता है, वह जैन ही है चाहे वह किसी जाति, वर्ग या धर्म का क्यों न हो।[६] एक आचार्य कहते हैं कि चाहे श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, बौद्ध हो या अन्य कोई, जो भी समत्व वृत्ति का आचरण करेगा, वह मोक्ष प्राप्त करेगा, इसमें सन्देह नहीं है।[७]

बौद्ध-दर्शन में भी यह समत्ववृत्ति स्वीकृत है। ''धम्मपद'' में कहा गया है कि सब पापों को नहीं करना और चित्त को समत्ववृत्ति में स्थापित करना ही बुद्ध का उपदेश है।[८] गीता के अनुसार सभी प्राणियों के प्रति आत्मवत दृष्टि[९], सुख-दुःख, लोह-कंचन, प्रिय-अप्रिय और निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, शत्रु-मित्र में समभाव और सावद्य (आरम्भ) का परित्याग ही नैतिक जीवन का लक्षण है।[१०] श्रीकृष्ण अर्जुन को यही उपदेश देते हैं कि हे अर्जुन! तू अनुकूल और प्रतिकूल सभी स्थितियों में समभाव धारण कर।[११] अपने निषेधात्मक रूप में सामायिक (समता) सावद्य कार्यों अर्थात् पाप कार्यों से विरक्ति है, तो अपने विधायक रूप में वह समत्वभाव की साधना है।[१२] भगवती सूत्र में कहा है कि– ''आत्मा ही सामायिक (समता) है और आत्मा ही सामायिक (समता) का प्रयोजन है।''[१३] इस सूत्र में समत्वभाव को प्राप्त करने के लिए आत्मबोध का होना आवश्यक बतलाया गया है।

आचारांगसूत्र के प्रथम उद्देशयक में ही हमें आत्मबोध का परिचय प्राप्त हो जाता है। सूत्र का प्रारम्भ ही अस्तित्व सम्बन्धी मानवीय जिज्ञासा से होता है। पहला ही प्रश्न है– इस जीवन के पूर्व मेरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तित्व था या नहीं अथवा इस जीवन के पश्चात् मेरी सत्ता बनी रहेगी या नहीं? मैं पूर्व जनम में कौन था? और मृत्यु के उपरान्त किस रूप में होऊँगा?[१४] यही अपने अस्तित्व का प्रश्न मानवीय जिज्ञासा और मानवीय बुद्धि का प्रथम प्रश्न है, जिसे सूत्रकार ने सर्वप्रथम उठाया है। मनुष्य के लिए मूलभूत प्रश्न अपने अस्तित्व या सत्ता का ही है। धार्मिक और नैतिक चेतना का विकास भी इसी अस्तित्व बोध या स्वरूप बोध पर आधारित है। मनुष्य की जीवन दृष्टि क्या और कैसी होगी? यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि अपने अस्तित्व, अपनी सत्ता और स्व-स्वरूप के प्रति उसका दृष्टिकोण क्या है? पाप और पुण्य अथवा धर्म और अधर्म की सारी मान्यताएँ अस्तित्व की धारणा पर ही खड़ी हुई है। इसीलिए सूत्रकार ने कहा है कि– जो इस 'अस्तित्व' या 'स्व-सत्ता' को जान लेता है वही आत्मवादी है, लोकवादी है, कर्मवादी है और क्रियावादी है।[१५] जब तक व्यक्ति अपनी सत्ता को नहीं पहचानता, स्व-स्वरूप का मान नहीं करता, तब तक समता की ओर नहीं बढ़ पाता। जब व्यक्ति को स्व-स्वरूप व इसकी सत्ता का भान हो जाता है, तभी वह समता की ओर बढ़ता है। व्यक्ति को जब इस 'स्व' और 'पर' भाव की स्वाभाविक और वैभाविक दशा का यथार्थ श्रद्धान हो जाता है, तो वह सम्यक्त्व सामायिक (समता) करता है। जब 'स्व' और 'पर' का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तो श्रुत सामायिक (समता) करता है और जब 'पर' भाव से 'स्व-भाव' की ओर लौटता है तो चारित्र सामायिक (समता) करता है।[१६]

आचारांग सूत्र में स्थान-स्थान पर स्व-स्वरूप का भान करवाया गया है तथा समत्ववृत्ति का उपदेश किया गया है। आचारांग की अहिंसा समतामय है। आश्रव-संवर का बोध कराते हुए सूत्रकार कहता है कि आत्मवादी मनुष्य यह जानता है कि मैंने क्रिया की थी। मैं क्रिया करता हूँ। मैं क्रिया करने वाले का भी अनुमोदन करूँगा। संसार में ये सब क्रियाएँ (कर्म-समारंभ) जानने तथा त्यागने योग्य हैं।[१७] इसलिए सूत्रकार कहते हैं कि तू देख। आत्मसाधक (समतादर्शी) लज्जमान है। इन षट् जीव निकायों की हिंसा नहीं करता।[१८] अणगार का लक्षण बताते हुए सूत्रकार कहते हैं कि अहिंसा में आस्था रखने वाला अर्थात् समता में स्थित साधक यह संकल्प करे कि प्रत्येक जीव अभय चाहता है, यह जानकर जो हिंसा नहीं करता, वही व्रती है। इस अर्हत् शासन में जो व्रती है, वही अणगार कहलाता है।[१९] आचारांग की साधना समता की साधना है। भावलोक में विचरण करने की साधना है। सूत्रकार भावलोक के सम्बन्ध में कहते हैं कि भावलोक का अर्थ क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी समूह है।[२०] यहाँ उस भावलोक की विजय का अधिकार है क्योंकि कषाय-लोक पर विजय प्राप्त करने वाला साधक काम-निवृत्त हो जाता है।[२१] और काम निवृत्त साधक, संसार से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि– संसार का मूल–आसक्ति है। अर्थात् जो गुण (इन्द्रिय-विषय है) वह (कषायरूप संसार का) मूल स्थान है और जो मूलस्थान है, वह गुण है।[२२] मेरेपन (ममत्व) में आसक्त हुआ मनुष्य प्रमत्त होकर उनके साथ निवास करता है। वह रात-दिन परितप्त एवं तृष्णा से व्याकुल रहता है।[२३] सूत्रकार कहते हैं कि हे पुरुष! न तो वे तेरी रक्षा करने और तुझे शरण देने में समर्थ हैं और न तू ही उनकी रक्षा व शरण के लिए समर्थ है।[२४] यहाँ सूत्रकार ने प्रमाद परिमार्जन की बात कही है। लोभ पर विजय प्राप्त करने के लिए सूत्रकार कहते हैं कि जो विषयों के दलदल से पारगामी होते हैं, वे वास्तव में विमुक्त हैं।[२५] आचारांग की समता समस्त प्राणियों को सुख से जीने का संदेश देती है। सूत्रकार कहते हैं कि सब प्राणियों को आयुष्य प्रिय है। सभी सुख का स्वाद चाहते हैं। दुःख से घबराते हैं। उनको वध (मृत्यु) अप्रिय है, जीवन प्रिय है। वे जीवित रहना चाहते हैं। सबको जीवन प्रिय है।[२६]

समता का लक्ष्य दृष्टाभाव को जागृत करना है। सूत्रकार कहते हैं कि जो द्रष्टा है (सत्यदर्शी), उसके लिए उपदेश की आवश्यकता नहीं होती।[२७] समताभाव के लिए आसक्ति को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। आचारांग में आसक्ति को शल्य कहा है। हे धीर पुरुष! तू आशा और स्वच्छन्दता करने का त्याग कर दे।[२८] समता का लक्ष्य एकीभाव है, आत्मा में लीन हो जाना है। सूत्रकार कहते हैं कि जो अनन्य (आत्मा) को देखता है, वह अनन्य (आत्मा) में रमण करता है। जो अनन्य (आत्मा) में रमण करता है, वह अनन्य (आत्मा) को देखता है।[२८] आगे कहा है कि जो आत्मा को जान लेता है, उसके लिए उपदेश की आवश्यकता नहीं रहती। अर्थात् द्रष्टा के लिए (सत्य का सम्पूर्ण दर्शन करने वालों के लिए) कोई उद्देश (उपदेश) नहीं है।[२९]

आचारांग में भ० महावीर कहते हैं कि इस संसार में व्याप्त आतंक और महाभय जिस व्यक्ति ने देख और समझ लिया है वही हिंसा से निवृत्त होने में सफल हो सकता है।[३०] आतुर लोग स्थान-स्थान पर परिताप पहुँचाते हैं वहीं दूसरी ओर देखो तो साधुजन समता का जीवन जीते हैं।[३१] ऐसे शांत और धीर व्यक्ति देहासक्ति से मुक्त हो जाते हैं।[३२] इसलिए महावीर कहते हैं कि हे पंडित! तू क्षण को जान।[३३] सूत्रकार कहते हैं कि धैर्यवान पुरुषों को अवसर की समीक्षा करनी चाहिए और क्षण भर भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।[३४] वास्तव में जिस व्यक्ति ने क्षण को पहचान लिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है वह एक पल का भी विलम्ब किये बिना अपने जन्म और मरण की मुक्ति के लिए प्रयास प्रारंभ कर ही देगा। महावीर कहते हैं कि कुशल व्यक्ति को प्रमाद से क्या प्रयोजन?[३५] वे कहते हैं कि उठो और प्रमाद न करो।[३६] यही समता आचारांग सूत्र में भावशीत और भावउष्ण, इन दोनों को समभावपूर्वक सहन करने का उपदेश किया है। कहा है कि– अमुनि (अज्ञानी) सदा सोये हुए हैं, तथा मुनि (ज्ञानी) सदैव जागते हैं।[३७] समता में स्थित साधक के लिए सूत्रकार कहते हैं कि समस्त प्राणियों की गति और अगति को भलीभाँति जानकर जो दोनों अन्तों (राग और द्वेष) से दूर रहता है, वह समस्त लोक में कहीं भी छेदा नहीं जाता, भेदा नहीं जाता, जलाया नहीं जाता और मारा नहीं जाता।[३८]

समता की साधना सत्य की साधना है। सत्य में समुत्थान करने के लिए कहा है कि– हे पुरुष! तू सत्य को ही भलिभाँति समझ। सत्य की आज्ञा (मर्यादा) में उपस्थित रहने वाला वह मेघावी मार (मृत्यु, संसार) को तर जाता है।[३९] वह सत्यार्थी साधक क्रोध, मान, माया और लोभ को शीघ्र ही त्याग देता है। समता में स्थित साधक के लिए कहते हैं कि जो एक (आत्मा) को जानता है, वह सब को जानता है और जो सबको (संसार) जानता है, वह एक आत्मा को जानता है।[४०] महावीर कहते हैं कि समताधारी साधक लोकेषणा में न भटके।[४१] जिस साधक में यह लोकेषणा बुद्धि नहीं है, उसके अन्य प्रवृत्ति अर्थात् सावद्यारम्भ-हिंसा नहीं होगी। अथवा जिसमें सम्यक्त्व ज्ञाति नहीं है या अहिंसा बुद्धि नहीं है, उसमें दूसरी विवेक बुद्धि नहीं होगी। हिंसा में रचे-पचे और उसी में लीन रहने वाले मनुष्य बार-बार जन्म धारण करते रहते हैं। मोक्ष मार्ग में प्रयत्न करने वाले, सतत प्रज्ञावान-धीर साधक से कहा गया है कि उन्हें देख जो प्रमत्त हैं, धर्म से बाहर हैं। तू अप्रमत्त होकर सदा अहिंसादि रूप धर्म में पराक्रम कर।[४२] निर्युक्तिकार ने लोक के सार के सम्बन्ध में प्रश्न उठाकर समाधान किया है कि– लोक का सार धर्म है, धर्म का सार ज्ञान है, ज्ञान का सार संयम है तथा संयम (समता) का सार मोक्ष है।[४३] समता में अस्थित लोगों की दृष्टि में धन, काम, भोग-साधन, शरीर, जीवन, भौतिक उपलब्धियाँ आदि सारभूत मानी जाती हैं, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि में अर्थात् समता में रमण करने वाले के लिए ये सब पदार्थ सारहीन हैं, क्षणिक हैं, नाशवान हैं, आत्मा को पराधीन बनाने वाले हैं और अन्ततः दुखदायी हैं। समता की दृष्टि में मोक्ष (परम पद) परमात्मपद आत्मा (शुद्ध, निर्मल, ज्ञानादि स्वरूप)। मोक्ष प्राप्ति के साधन– धर्म, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप एवं संयम आदि सारभूत हैं।[४४] संसार स्वरूप का परिज्ञान कराते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जिसे संशय (मोक्ष और संसार के विषय में सन्देह) का परिज्ञान हो जाता है, उसे संसार के स्वरूप का परिज्ञान हो जाता है। जो संशय को नहीं जानता, वह संसार को भी नहीं जानता।[४५] इसलिए सूत्रकार कहते हैं कि (समता में स्थित) साधक (समतादर्शी) संसारवृक्ष के बीज रूप कर्मों (कर्मबन्धों) के विभिन्न कारणों को जानकर उनका परित्याग करें और् कर्मों से सर्वथा मुक्त (अवधूत) बनें।[४६]

आचारांग की समता अन्त में विमोक्ष का निरूपण करती है। 'विमोक्ष' का अर्थ परित्याग करना, अलग हो जाना है और विमोह का अर्थ है– मोह रहित हो जाना। तात्विक दृष्टि से अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। बेड़ी आदि किसी बन्धन रूप द्रव्य से छूट जाना 'द्रव्य विमोक्ष' है और आत्मा को बन्धन में डालने वाले कषायों अथवा आत्मा के साथ लगे कर्मों के बन्धन रूप संयोग से मुक्त हो जाना 'भाव-विमोक्ष' है।[४७] इसे हम द्रव्य समता और भाव समता की संज्ञा दे सकते हैं।

समता का लेखा-जोखा हमें भ० महावीर के जीवन की घटनाओं से प्राप्त होता है, जो कि आचारांग सूत्र के 'उपधान-श्रुत' नामक अध्ययन में वर्णित है। सूत्रकार ने लाढ़देश की उत्तम तितिक्षा-साधना का वर्णन करते हुए कहा है कि 'दुर्गम लाढ़देश' के वज्रभूमि और शुभ्रभूमि नामक प्रदेश में भ० महावीर ने विचरण किया था। वहाँ उन्होंने बहुत ही तुच्छ (उबड़-खाबड़) वासस्थानों व कठिन आसनों का सेवन किया था।[४८] लाढ़देश के क्षेत्र में भगवान ने अनेक उपसर्ग सहे, वहाँ के बहुत से अनार्य लोग भगवान पर डंडों आदि से प्रहार करते थे। उस देश के लोग ही प्रायः रूखे थे, अतः भोजन भी प्रायः रूखा-सूखा ही मिलता था। वहाँ के शिकारी कुत्ते उन पर टूट पड़ते और काट खाते थे।[४९] कुत्ते काटने लगते या भौंकते तो बहुत थोड़े से लोग उन काटते हुए कुत्ते को रोकते, अधिकांश लोग तो इस श्रमण को कुत्ते काटें, इस नियत से कुत्तों को बुलाते और छुछकार कर उनके पीछे लगा देते थे।[५०] उस समय अणगार भ० महावीर प्राणियों के प्रति मन, वचन और काया से होने वाले दण्ड का परित्याग और अपने शरीर के प्रति ममत्व का व्युत्सर्ग करके समता में विचरण करते थे। भगवान उन ग्राम्यजनों के कांटों के समान तीखे वचनों को निर्जरा का हेतु समझकर सहन करते थे।[५१] उस लाढ़देश में बहुत से लोग डण्डे से या मुक्के से अथवा भालों आदि शस्त्र से या फिर मिट्टी के ढ़ेले या खप्पर से मारते और 'मारो-मारो' कहकर होहल्ला मचाते।[५२] उन अनार्यों ने पहले एक बार ध्यानस्थ खड़े भगवान के शरीर को पकड़ कर माँस काट लिया था। उन्हें (प्रतिकूल) परीषहों से पीड़ित करते थे फिर भी भगवान समता में स्थिर रहते।[५३] कुछ दुष्ट लोग ध्यानस्थ भगवान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को ऊँचा उठा कर नीचे गिरा देते थे। किन्तु भगवान शरीर का व्युत्सर्ग किये हुए परिषह सहन करने के लिए प्रणबद्ध, कष्ट सहिष्णु, दुःख प्रतिकार की प्रतिज्ञा से मुक्त थे। अतएव वे इन परिषहों, उपसर्गों से विचलित नहीं होते थे।[५४] जैसे कवच पहना हुआ योद्धा युद्ध के मोर्चे पर शस्त्रों से बिद्ध होने पर भी विचलित नहीं होता है वैसे ही समता-संवर का कवच पहने हुए महावीर उस देश में पीड़ित होने पर भी कठोरतम कष्टों का सामना करते हुए मेरु पर्वत की तरह ध्यान में निश्चल रहकर समता (मोक्षपथ) में पराक्रम करते थे।[५५] दो मास से अधिक अथवा छः मास तक भी महावीर कुछ नहीं खाते-पीते थे। रात-दिन वे राग-द्वेष रहित समता में स्थिर रहे।[५६] वे गृहस्थ के लिए बने हुए आहार की ही भिक्षा ग्रहण करते थे और उसको वे समतायुक्त बने रहकर उपयोग में लाते थे।[५७] महावीर कषाय रहित थे। वे शब्दों और रूपों में अनासक्त रहते थे। जब वे असर्वज्ञ थे तब भी उन्होंने साहस के साथ संयम पालन करते हुए एक बार भी प्रमाद नहीं किया।[५८] महावीर जीवन पर्यन्त समता में स्थिर रहे।[५९]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचारांगसूत्र में समता के महत्वपूर्ण सूत्र संग्रहित हैं जो आत्म दृष्टि-अहिंसा-समता, वैराग्य, अप्रमाद, अनासक्ति, निस्पृहता, निस्संगता, सहिष्णुता, ध्यानसिद्धि, उत्कृष्ट संयम-साधना, तप की आराधना, मानसिक पवित्रता और आत्मशुद्धि-मूलक पवित्र जीवन में अवगाहन करने की प्रेरणा देते हैं। इसमें मूल्यात्मक चेतना की सबल अभिव्यक्ति हुई है। इसका प्रमुख उद्देश्य समता पर आधारित अहिंसात्मक समाज का निर्माण करने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करना है, जिससे समाज के आधार पर सुख-शान्ति एवं समृद्धि के बीज अंकुरित हो सकें। हिंसा-अहिंसा के इतने विश्लेषण के कारण ही 'आचारांग' को विश्व साहित्य में सर्वोपरि स्थान दिया जा सकता है। ''आचारांग'' की घोषणा है कि प्राणियों के विकास में अन्तर होने के कारण किसी भी प्रकार के प्राणी के अस्तित्व को नकारना अपने ही अस्तित्व को नकारना है।[६०]

पूर्व प्रभारी एवं आगम योजना अधिकारी
आगम-अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान,
पश्चिमी मार्ग, उदयपुर ।

संदर्भ ग्रन्थ

१) आचारांग सूत्र – १३-१४, १०३-१०९, २) नियमसार – २५, ३) उत्तराध्ययन – १९/९०-९१, ४) गोम्मटसार जीवकाण्ड (टीका) ३६८, ५) जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययेन भाग २, पृ. ३१३ –डॉ० सागरमल जैन, ६) भगवतीसूत्र २५/७/२१-२३, ७) जिनवाणी, सामायिक अंक पृ० ५७, ८) धम्मपद – १८३, ९) गीता – ६/३२, १०) गीता – १४/२४-२५, ११) गीता – २/४८, १२) जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ३९३-९४, १३) ''आयाखलु सामाइए, आया सामाइ यस्स अट्ठे।''– भगवतीसूत्र, १४) ''अत्थि में आया उववाइए, नथि में आया । के अहं आसी, केवा इओ चुओ इहपेच्चा भविस्सामि ।।''– आचारांगसूत्र – १/१/१/३, १५) ''सोहँ से आयावाई, लोगावाई, कम्मवाई, किरियावाई ।''– आचारांगसूत्र – १/१/१/४५, १६) जिनवाणी सामायिक अंक, पृ० ९७, १७) आचारांगसूत्र – १/१/१/४, १८) आचारांगसूत्र – १/१/१/५, १९) आचारांगसूत्र – १/१/१/४०, २०) भावे कसायलोगो, अहिगारो तस्स विजएण – आचारांगटीका-१७५, २१) ''काम नियतमई खलु संसारा मुच्चई खिप्पं।'' –आचारांगटीका–१७७, २२) ''जे गुणे से मूलट्ठाणे, जे मूलट्ठाणे से गुणे।''– आचारांग २/१/६३, २३) ''इच्च त्थं गढिए लोए वसे पमत्ते।''– आचारांग-२/१/६३, २४) ''णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमंपि सेसिं णालं ताणाए वा सखाए वा।'' –आचारांग–२/१/६७, २५) ''विमुका हुते जणा जे जणा पारगामिणो।'', आचारांग–२/२/७१, २६) ''सव्वे पाणा पिआउया सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवह । पियजीविणो जीवितुकामा । सव्वेसिंजीवियं पियं ।।'' –आचारांग–२/३/७८, २७) ''उद्देसो पासगस्स णात्थि ।''– आचारांग–२/३/८०, २८) ''जे अणण्णदंसी से अणण्णारामें, जे अणण्णारामे से अणण्णादंसी ।।''– आचारांग–२/६/१०१, २९) ''उद्देसो पासगस्म णत्थि''– आचारांग–२/३/८०, ३०) आचारांग पृ० ४३/१४५-१४६, ३१) ''लज्जमाणा पुढा पासा ।''– आचारांग पृ० ८/१७, ३२) ''इह संति गया दविया णाव कंखंति।''– आचारांग पृ० ४२/१४९, ३३) ''खणं जाणाहि पंडिए''– आचारांग पृ० ७४/२४, ३४) ''अंतरं च खलु इमं संपेहाए-धीरे मुदुत्तमवि णो पमायए।'' –आचारांग पृ० ७२/११, ३५) ''अलं कुसलस्स पमाएणं।''– आचारांग पृ० ८८/९५, ३६) ''उट्ठिए णो पमायए।'' आचारांग पृ० १८२/२३, ३७) ''सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरंति''– आचारांग–३/१/१०६, ३८) आचारांग – ३/३/१२३, ३९) आचारांग – ३/२/१२७, ४०) ''जे एगं जाणति से सव्वं जाणाति, जे सव्व जाणति से एगं जाणाति।''– आचारांग–३/४/१२९, ४१) ''णो लोगस्सेसणं चरे।''– आचारांग–४/१/१३३, ४२) आचारांगसूत्र – पृ० ११९, ४३) ''लोकस्सारं धम्मो धम्मंपि य नाणसारियं बिति । नाणं संजनसारं, संजनसारं च निव्वाणं।'' –आ० निर्युक्ति गा० २४४–टीका से उद्धृत, ४४) आचारांग पृ० १४४, ४५) ''संसघं परिजाणतो संसारे परिण्णाते भवति, संसयं अपरिजाजतो संसारे अपरिण्णाते भवति।'' –आचारांग – ५/१/१४९, ४६) आचारांग निर्युक्ति गाथा २५१, ४७) आचारांग निर्युक्ति गाथा– २५९-२६०, ४८ से ५९) आचारांगसूत्र-नवम अध्ययन–सूत्र २९४, २९५, २९६, २९९, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३१२, ३१५, ३२९, ३३२ क्रमानुसार, ६०) आचारांग चयनिका – डॉ० कमलचन्द सोगाणी–भूमिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org